जैन
पथप्रदर्शक
ए-4, बापूनगर, जयपुर - 302015 (राज.)
नैतिक एवं सामाजिक चेतना का अग्रदूत निष्पक्ष पाक्षिक

यह भगवान आत्मा ही सम्पूर्ण श्रुतज्ञान का सार है। द्वादशांग का प्रतिपाद्य एकमात्र भगवान आत्मा ही है।

ह्न गागर में सागर, पृष्ठ-30

वर्ष : 28, अंक : 23 | सम्पादक : **पण्डित रतनचन्द भारिल्ल** | आजीवन शुल्क : 251 रुपये
मार्च (प्रथम), 2006 | प्रबन्ध सम्पादक : **पं. संजीवकुमार गोधा व पं. जितेन्द्र वि. राठी** | वार्षिक शुल्क : 25 रु., एक प्रति : 2/-

महामस्तकाभिषेक महोत्सव धूमधाम से मना

श्रवणबेलगोला (कर्नाटक) : सात सौ जैन श्रमणों की साधना भूमि, विश्वप्रसिद्ध ऐतिहासिक धर्मनगरी श्रवणबेलगोला की विश्व-आश्चर्यकारी 1025 वर्ष प्राचीन गोम्मटेश्वर भगवान बाहुबली की प्रतिमा का 12 वर्षीय परंपरा का 86 वाँ एवं इक्कीसवीं शताब्दी का प्रथम महामस्तकाभिषेक पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव आदि अनेक मांगलिक कार्यक्रमों सहित दिनांक 8 फरवरी से 19 फरवरी, 2006 तक ऐतिहासिक उपलब्धियों के साथ मनाया गया ।

सम्पूर्ण महोत्सव राष्ट्रसंत आचार्य 108 श्री विद्यानंदजी मुनिराज के मार्गदर्शन, आचार्य 108 श्री वर्द्धमानसागरजी महाराज एवं अन्य आचार्यों सहित लगभग 250 दिगम्बर संतों के पावन सान्निध्यतथा कर्मयोगी स्वस्तिश्री भट्टारक चारुकीर्ति स्वामीजी के कुशल नेतृत्व में सम्पन्न हुआ।

समारोह का उद्घाटन दिनांक 22 जनवरी को महामहीम राष्ट्रपति डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम ने किया था। आदिनाथ पंचकल्याणक महोत्सव के अन्तर्गत दिनांक 6 फरवरी को राज्याभिषेक समारोह में महामहीम उपराष्ट्रपति भैरोसिंहजी शेखावत ने राजकुमार ऋषभदेव का राजतिलक कर राज्यभार सौंपा ।

समारोह में कर्नाटक के मुख्यमंत्री एच.डी. कुमारस्वामी, राज्यपाल श्री टी.एन. चतुर्वेदी, उपमुख्यमंत्री श्री बी. एस. येडियूरप्प, तात्कालिक मुख्यमंत्री धर्मसिंह, श्री एम.पी. प्रकाश, श्री रेवण्णा, श्री पुट्टेगौडा आदि राजनेताओं के पदार्पण के अतिरिक्त महामस्तकाभिषेक समिति के गौरवाध्यक्ष श्री नरेशकुमारजी सेठी, डॉ. वीरेन्द्र हेगडे, डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल आदि महानुभावों

की पूरे समय उपस्थिति रही ।

महामस्तकाभिषेक में भगवान बाहुबली की प्रतिमा का प्रथम अभिषेक करने का सौभाग्य श्री अशोक पाटनी परिवार, आर.के. मार्बल्स, किशनगढ़ (राज.) को प्राप्त हुआ। इसी अवसर पर श्रवणबेलगोला में बाहुबली शिशु अस्पताल की निर्माण योजना को साकार करने के लिये आर.के. चेरिटीज की ओर से महोत्सव समिति को एक करोड आठ लाख रुपये की आर्थिक सहायता प्रदान की गई ।

समारोह के मध्य श्री जिनेन्द्र रथ शोभायात्रा पूर्वक अन्तिम श्रुतकेवली भद्रबाहु स्मृति दिवस एवं पूर्वाचार्य स्मृति दिवस मनाया गया तथा आचार्य शांतिसागर स्मारक भवन का लोकार्पण किया गया।

प्रतिदिन सांस्कृतिक कार्यक्रम हुये, जिसमें मुम्बई निवासी भवाई नृत्यांगना श्रीमती सीमा विनय जैन का 57 कलशों सहित कलश नृत्य हुआ। तीर्थधाम मंगलायतन, अलीगढ़ द्वारा ज्ञान-वैराग्यवर्द्धक **भरत-बाहुबली** नाटक तथा जैन विकास महिला मंडल सोलापुर द्वारा **वीर गाथा गोम्मटेश की** नाटिका प्रस्तुत की गई।

महामस्तकाभिषेक के इतिहास में प्रथम बार ही 9 दिन तक लगातार चलनेवाले इस समारोह में अलग-अलग श्रेणियों के 1008 कलश ढोरे गये।

जयपुर के वीर सेवक मण्डल के अध्यक्ष भागचन्द मुशरफ एवं कुलपति प्रदीप गोधा के सान्निध्य में 150 स्वयं सेवकों ने लगभग 22 दिन रहकर महोत्सव की व्यवस्थायें संभाली तथा जयपुर के श्री सुभाषजी जैन के सान्निध्य में लगभग 600 पदयात्रियों ने बैंगलोर से श्रवण- बेलगोला तक पदवंदना की।

महामस्तकाभिषेक को सफल बनाने में केन्द्र सरकार, कर्नाटक सरकार, राजकीय, धार्मिक तथा अन्य प्रमुख लोगों एवं संगठनों ने अपना सक्रिय योगदान दिया।

इस अवसर पर पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर द्वारा विभिन्न दातारों के सहयोग से डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल द्वारा लिखित 9 पुस्तकों का एक सैट बनाकर लगभग 4.5 लाख रुपयों के 11हजार सैट नि:शुल्क वितरित किये गये।

समारोह में देश-विदेश से जैन व जैनेत्तर लगभग 20 से 25 लाख लोगों की उपस्थिति रही।●

सम्पादकीय –

नींव का पत्थर

20

ह्न रतनचन्द भारिल्ल

(गतांक से आगे .....)

कर्म के भेद ह्न जैनदर्शन में सामान्यतया कर्त्ता का कर्म तीन प्रकार का माना गया है। उक्तं च ह्न 'तत्त्रिविधं निर्वत्यं विकार्यं प्राप्यं चेति।'

(अ) प्राप्य कर्म ह्न कर्त्ता जिसे प्राप्त करता है वह प्राप्यकर्म है अर्थात् कर्त्ता जो नया उत्पन्न नहीं करता तथा विकार करके भी प्राप्त नहीं करता, मात्र जिसे प्राप्त करता है (अर्थात् स्वयं उसकी पर्याय) वह कर्त्ता का प्राप्य कर्म है। जैसे ह्न स्वर्ण अंगूठी को प्राप्त करता है। यहाँ अँगूठी स्वर्ण का **प्राप्य कर्म** है।

(ब) विकार्य कर्म ह्न कर्त्ता के द्वारा पदार्थ में विकार (परिवर्तन) करके जो कुछ किया जावे वह कर्त्ता का विकार्य कर्म है। जैसे ह्न अँगूठी स्वर्ण का विकार्य कर्म है। यहाँ स्वर्ण ही अँगूठी रूप विशेष से परिवर्तित हुआ है।

(स) निर्वर्त्य कर्म ह्न कर्त्ता के द्वारा जो पहले से न हो ऐसा कुछ नवीन उत्पन्न किया जाये वह कर्त्ता का निर्वर्त्य कर्म है। जैसे ह्न स्वर्ण से नवीन अंगूठी बनीं। यहाँ स्वर्ण ही अंगूठी रूप निर्वर्त्य कर्म हुआ।

इस प्रकार कर्त्ता-कर्म के स्वरूप से स्पष्ट हुआ कि जो स्वतंत्र रूप से जिस कार्य को करे उसका वह कर्त्ता है और जो कर्त्ता को इष्ट हो वह कर्म है।

कर्त्ता-कर्म सम्बन्ध के विषय आचार्य अमृतचन्द ने समयसार गाथा ७६ में आत्मख्याति टीका में कर्त्ता-कर्म सिद्धान्त की व्याख्या व्याप्य-व्यापक संबंध के द्वारा की गई है और यह स्वीकृत किया गया है कि वस्तुतः कर्त्ता-कर्म संबंध वहीं होता है, जहाँ व्याप्य-व्यापक भाव अथवा उपादान-उपादेय भाव होता है। जो वस्तु कार्य रूप परिणमित होती है वह व्यापक है, उपादान है तथा जो कार्य होता है वह व्याप्य है, उपादेय है। उदाहरणार्थ :ह्न मिट्टी की कलश रूप पर्याय व्याप्य है तथा उस पर्याय में मिट्टी व्यापक है, कुम्हार नहीं। अतः कलश (पर्याय) कर्म तथा मिट्टी (द्रव्य) उसकी कर्त्ता है, कुम्हार उसका कर्त्ता नहीं है, क्योंकि मिट्टी की सर्व अवस्थाओं में स्वयं मिट्टी व्याप्त होती है। कुम्हार तो उस कलश रूप कार्य का निमित्त (सहचर) मात्र है।

समयसार कलश ४९ में आचार्य अमृतचंद्र ने इसका अत्यंत सरल व स्पष्ट निरूपण किया है ह्न ''व्याप्य-व्यापकता तत्स्वरूप में ही होती है अतत्स्वरूप में नहीं होती है और व्याप्य-व्यापक भाव के संभव हुए बिना कर्त्ता-कर्म की स्थिति कैसी? कलश में प्रयुक्त 'ही' शब्द पर जोर देकर आचार्य अमृतचन्द्र ने इस तथ्य से अवगत कराया है कि एक द्रव्य का अपनी ही पर्याय में व्याप्य-व्यापक भाव का सद्भाव है, दो द्रव्यों में नहीं। इसके भावार्थ में पं. जयचंद छाबड़ा ने कहा है ह्न जो सर्व अवस्थाओं में व्याप्त होता है सो तो व्यापक है और कोई अवस्था विशेष वह व्याप्य है।

आचार्य अमृतचन्द्र ने समयसार कलश २११ तथा प्रवचनसार गाथा १२२ की टीका में भी इसी मन्तव्य को विस्तार से व्यक्त किया है।

समयसार गाथा १०२ में भी यही बात कही गई है। वहाँ कहा है कि आत्मा जो शुभ-अशुभभाव करता है वह उसको कर्त्ता होता है। तथा वे शुभ या अशुभ भाव उसके कर्म होते हैं।

इसी संदर्भ में प्रवचनसार गाथा ९ भी अवलोकनीय है।

पंचास्तिकाय गाथा ५७ भी यहाँ उल्लेखनीय है। वहाँ कहा है कि ह्न 'कर्म को वेदता हुआ जीव जैसे भाव को करता है वह उस भाव का उस प्रकार से कर्त्ता होता है।

उपर्युक्त प्रमाणों से यह तो स्पष्ट होता ही है कि परिणामी वस्तु का ही परिणाम होता है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि प्रत्येक द्रव्य अन्य परद्रव्य का कर्त्ता कदापि नहीं होता।

समयसार गाथा ९८, ९९, १०३ एवं ११६ गाथा की टीका भी इस संदर्भ में दृष्टव्य हैं। अन्त में समयसार कलश २०० में स्पष्ट कह दिया कि ह्न

नास्ति सर्वोऽपि सम्बन्धः परद्रव्यात्म तत्त्वयोः।
कर्तृकर्मत्व सम्बन्धाभावे तत्कर्तृता कुतः॥

अर्थात् परद्रव्य और आत्मतत्व में कोई भी सम्बन्ध नहीं है। अतः कर्त्ता-कर्म सम्बन्ध का अभाव होने से आत्मा के परद्रव्य का कर्तृत्व कहाँ से हो सकता है? नहीं हो सकता।

इसप्रकार विभिन्न द्रव्यों के बीच सर्वप्रकार के सम्बन्धों का निषेध ही वस्तुतः वस्तुओं की पूर्ण स्वतंत्रता की घोषणा है।

वस्तुस्वातंत्र्य के सिद्धान्त की सिद्धि में आगम के आलोक में प्रस्तुत उपर्युक्त कर्त्ता-कर्म का सिद्धान्त तो सशक्त साधन है ही। इसके अतिरिक्त निमित्तोपादान के रूप में कारण-कार्य की आगमोक्त सिद्धि तथा आगम प्रसिद्ध चार अभाव, पाँच समवाय, षट्कारक आदि अन्य आगमोक्त प्रकरण भी वस्तुस्वातंत्र्य की सिद्धि में प्रबल हेतु हैं, जिनके कतिपय आगम प्रमाण निम्न प्रकार हैं :ह्न जिज्ञासु पाठक मूलग्रन्थों का अवलोकन कर सकें एतदर्थ यहाँ मात्र गाथाओं श्लोकों एवं कारिकाओं की नम्बए गये हैं।

● **कारण-कार्य विषयक आगम आधार :ह्न** वस्तु के स्वतंत्र परिणमन में कारण-कार्य के रूप में निमित्तोपादान का विषय आगम सम्मत ठोस आधार है। एतदर्थ लेखक की लघु पुस्तिका 'पर से कुछ भी सम्बन्ध नहीं' तथा डॉ. भारिल्ल की पुस्तक 'निमित्तोपादान' का अध्ययन अपेक्षित है। मूल आगम ग्रन्थ में समयसार कलश ५१ व ५४ दृष्टव्य है। इसी के समर्थन में कार्तिकेयानुप्रेक्षा गाथा २१९ भी दृष्टव्य है।

● **चार अभावों के प्रकरण में आगम आधार :ह्न** आचार्य समन्तभद्र का देवागम स्तोत्र तो मूल आधार है ही, देवागम स्तोत्र का ही अपर नाम आप्तमीमांसा है। आप्तमीमांसा पर आचार्य अकलंकदेव ने आठ सौ श्लोक प्रमाण अष्ट शती टीका लिखी तथा आचार्य विद्यानन्द देव ने उस टीका पर आठ हजार श्लोक प्रमाण अष्ट सहस्री वृहद् टीका लिखी है। जिसमें देवागमस्तोत्र की कारिका ९, १०, ११ तथा १५, १७, १८ के आधार पर चार अभावों का सयुक्ति विस्तृत-विवेचन किया है। उससे वस्तुस्वातंत्र्य के सिद्धान्त को सर्वाधिक बल प्राप्त हुआ है।

इसके अतिरिक्त युक्तानुशासन ग्रन्थ की कारिका ५९ एवं आचार्य अकलंकदेव के राजवार्तिक अध्याय २ सूत्र ८ में इसका पुरजोर समर्थन है।

● **क्रमबद्धपर्याय** के प्रतिपादन में आचार्य प्रभाचन्द्र के प्रमेय कमलमार्तण्ड, कार्तिकेयानुप्रेक्षा की ३२१ से ३२३ गाथायें, समयसार गाथा ३०८ से ३११ की आत्मख्याति टीका तथा पद्मपुराण के सर्ग ११० का श्लोक ४० समर्पित है। सर्वज्ञता तो मूल आधार है ही। सर्वज्ञता हेतु आगम आधार देखें ह्न प्रवचनसार गाथा ३९, तत्वार्थसूत्र अध्याय १ सूत्र २९, सर्वार्थसिद्धि अध्याय १, सूत्र २९ आदि। **(समाप्त)**

ब्र. यशपालजी द्वारा धर्मप्रभावना

कुर्डूवाडी (महा.) : यहाँ दिनांक 11 से 21 फरवरी, 2006 तक शिक्षण-शिविर का आयोजन किया गया; जिसमें ब्र. यशपालजी जैन जयपुर के प्रतिदिन प्रात: दस करण, दोपहर में गुणस्थान व रात्रि में प्रयोजनभूत सात तत्त्वों पर मार्मिक प्रवचन हुये।

इसके अतिरिक्त दिनांक 5 फरवरी से 23 मार्च, 2006 के मध्य आपकी यात्रा के दौरान हेरले, वसगडे, कोल्हापुर, नांद्रे, मजले आदि स्थानों के लोगों को भी आपके मार्मिक प्रवचनों का लाभ मिला तथा बाहुबली ब्रह्मचर्याश्रम के विद्यार्थियों को कण्ठपाठ हेतु प्रेरणा दी गई एवं माढा ग्राम में डॉ. रमेश दोशी के साथ तात्त्विकचर्चा हुई।

वार्षिकोत्सव सम्पन्न

नागपुर (महा.) : यहाँ श्री महावीर दिगम्बर जैन मंदिर का चौदहवाँ वार्षिकोत्सव दिनांक १२ से १६ फरवरी तक सानन्द सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर २० तीर्थंकर मण्डल विधान का आयोजन किया गया।

प्रतिदिन प्रात: पण्डित राकेशकुमारजी शास्त्री अलीगढ़ तथा रात्रि में पण्डित विपिनजी शास्त्री श्योपुर एवं पण्डित संजयजी शास्त्री जेवर के प्रवचनों का लाभ मिला। विधि-विधान के सम्पूर्ण कार्य पण्डित ऋषभजी शास्त्री छिंदवाड़ा एवं पण्डित संजयजी जेवर ने सम्पन्न कराये।

रात्रि में सांस्कृतिक कार्यक्रम भी हुये। सभी कार्यक्रमों में पण्डित विनितजी शास्त्री ग्वालियर, पण्डित रत्नेशजी मेहता, पण्डित स्वप्निलजी शास्त्री, पण्डित देवेन्द्रजी बण्ड का सहयोग प्राप्त हुआ। **ह्न अशोक जैन**

दान राशियाँ प्राप्त

1. किशनगढ़ निवासी श्री प्रदीपकुमारजी चौधरी के सुपुत्र चि. तिलक एवं भीलवाड़ा निवासी श्री निर्मलकुमारजी लुहाड़िया की सुपुत्री सौ. श्वेता का विवाह दिनांक 21 फरवरी, 06 को शुद्ध जैन आम्नायानुसार सम्पन्न हुआ। इस उपलक्ष में 1001/- रुपये जैनपथप्रदर्शक को दान स्वरूप प्राप्त हुये। वर-वधु लौकिक एवं पारलौकिक उत्कृष्ट जीवन का निर्माण करें यही हमारी मंगल कामना है।

2. श्री लालचन्दजी नावडिया उदयपुर के सुपुत्र चि.कमलेश का सौ. पिंकी जैन के साथ तथा इनहीं की सुपुत्री सौ.लीना का चि.दीपक जैन के साथ विवाह सम्पन्न हुआ। इस उपलक्ष में 501/- रुपये प्राप्त हुये। हम आपके उज्जवल भविष्य की कामना करते हैं।

3. श्री धनकुमारजी जैन जयपुर के सुपुत्र चि. स्वप्निल की सगाई के उपलक्ष में 501/-रुपये प्राप्त हुये।

4. श्री किशोरजी जैन अहमदाबाद की ओर से 501/- रुपये।

5. श्री राजेशजी जैन सरायपाली (छ.ग) की ओर से 200/- रुपये।

6. श्रीमती प्रेमलतादेवी गंगवाल की ओर से 150/- रुपये ।

7. श्रीमती पार्वतीदेवी गुना की ओर से 101/-रुपये ।

8. श्री गौरीलालजी सेठी झुमरीतलैया की ओर से 101/- रुपये।

जैनपथप्रदर्शक समिति उक्त समस्त दान दातारों का धन्यवाद ज्ञापित करते हुये भावना भाती है कि भविष्य में भी आपका सहयोग इसीप्रकार प्राप्त होता रहेगा। **ह्न प्रबन्ध सम्पादक**

विदाई समारोह सम्पन्न

जयपुर (राज.) : यहाँ श्री टोडरमल स्मारक भवन में दि. 26 फरवरी, 2006 को श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धान्त महाविद्यालय के शास्त्री द्वितीय वर्ष के छात्रों ने शास्त्री तृतीय वर्ष के छात्रों को भावभीनी विदाई दी।

सभा की अध्यक्षता पण्डित रतनचन्दजी भारिल्ल ने की। अतिथि के रूप में डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल, पण्डित पूनमचन्दजी छाबड़ा, ब्र. यशपालजी जैन, पण्डित शांतिकुमारजी पाटील, पण्डित श्रेयांसजी सिंघई, श्री राजधरजी मिश्र, श्री जितेन्द्रजी पालीवाल आदि महानुभाव मंचासीन थे।

समारोह में शास्त्रीअन्तिम वर्ष के विद्यार्थियों में संभव जैन, अनिल आलमान, जितेन्द्र चौगुले, कमलेश जैन, आदित्य जैन, शाकुल जैन, अंचल जैन, शशांक जैन, विकास जैन, दीपक अथणे, विमोश जैन ने समस्त विद्यार्थियों की ओर से महाविद्यालय में व्यतीत किये पाँच वर्ष के अनुभवों एवं अपनी आगामी योजनाओं के संबंध में विचार व्यक्त करते हुये महाविद्यालय परिवार व गुरुजनों के प्रति कृतज्ञता व्यक्त की।

अन्त में शास्त्री अन्तिम वर्ष के विद्यार्थियों को तिलक लगाकर, माल्यार्पण, श्रीफल एवं स्मृतिचिह्न भेंटकर सम्मानित किया गया।

कार्यक्रम का संचालन राहुल जैन अलवर, प्रशान्त उखलकर सेनगाँव एवं निखिल जैन कोतमा ने किया तथा संयोजन जितेन्द्र जैन मुम्बई, अनुप्रेक्षा जैन मुम्बई एवं अंकुर जैन देहगाँव ने किया। **ह्न किशोर धोंगडे**

मस्तकाभिषेक एवं विधान सम्पन्न

खड़ैरी (म.प्र.) : यहाँ भगवान बाहुबली मस्तकाभिषेक के प्रसंग पर सकल दिग. जैन समाज खड़ैरी द्वारा जैन युवा शास्त्री परिषद के तत्त्वावधान में पंचदिवसीय बाहुबली मस्तकाभिषेक एवं पार्श्वनाथ विधान का आयोजन किया गया। इस अवसर पर पण्डित ताराचन्दजी जैन, पण्डित नरोत्तमजी शास्त्री एवं पण्डित भानुजी शास्त्री के प्रवचनों का लाभ मिला। विधानादि के कार्य पण्डित मनीषजी शास्त्री 'सिद्धान्त' ने सम्पन्न कराये। कार्यक्रमों का संचालन अखिल भारतीय जैन युवा एवं महिला फैडरेशन ने किया।

हार्दिक शुभकामनायें

दिग.जैन महासमिति के राष्ट्रीय अध्यक्ष और विद्या विकास योजना श्रवण-बेलगोला के अध्यक्ष प्रमुख जौहरी श्री विवेकजी काला जयपुर की सुपुत्री सौ. श्रद्धा का शुभ विवाह श्रीमान् सुरेशजी पाटनी (आर.के. मार्बल, किशनगढ़) के सुपुत्र चि. विकास के साथ दिनांक २३ जनवरी, २००६ को सादगीपूर्ण माहौल में सम्पन्न हुआ।

शादी के अवसर पर गुजरात के राज्यपाल श्री नवलकिशोर शर्मा एवं राजस्थान की मुख्यमंत्री वसुंधराराजे सहित राजस्थान के करीब-करीब सभी मंत्रीगण, प्रमुख जौहरी एवं जैन समाज के प्रमुख व्यक्तियों ने नव-दम्पत्ति को अपना आशीर्वाद प्रदान कर कार्यक्रम की गरिमा बढ़ाई।

आपकी ओर से समिति को ११००/-रुपये प्राप्त हुये; एतदर्थ धन्यवाद ! जैनपथप्रदर्शक समिति की ओर से वर-वधु को हार्दिक शुभकामनायें।

कहानी ...

जुड़वाँ

ह्न जयन्तीलाल जैन, नौगामा

देवालय और देवालय के पास में ही बना हुआ विशाल जलाशय अर्थात् तालाब। जलाशय के ही एक किनारे पर बने हुये देवालय को जलाशय से घृणा हो गई; क्योंकि वह जलाशय इन दिनों पाप का स्थान बन चुका था। हुआ यूँ कि किसी हिंसक ठेकेदार ने उस जलाशय में मत्स्य पालन का ठेका ले लिया। बस ! फिर क्या था ? आये दिन वहाँ से मछलियों का शिकार होने लगा।

यह बात भी नहीं थी कि देवालय में आकर प्रतिदिन दर्शन-पूजन करनेवाले बन्धुओं ने इस घोर कुकृत्य का विरोध न किया हो; किन्तु हिंसकों की बहुल्यता के आगे अल्पसंख्यक अहिंसकों की एक भी न चली।

देवालय ने भी यह सब देखा; परन्तु उसकी समझ में अभी तक यह बात नहीं आई कि मेरे भीतर यह शस्त्रधारी परमशक्तिशाली सरागी देव विराजमान हैं, उन्होंने इस घोर कुकृत्य का विरोध क्यों नहीं किया ? उन्होंने अपने भक्तों की भावनाओं की कद्र क्यों नहीं की और उन पापियों को दण्डित क्यों नहीं किया ?

तो क्या ये देव सचमुच शक्तिहीन होते हैं ? कहीं ऐसा तो नहीं कि इन सब बातों का इन्हें पता ही न हो अर्थात् ये अल्पज्ञ ही हों।

खैर ! होगा। जब इन्हें ही कुछ नहीं पड़ी तब मुझे क्या ? ह्न इसी सोच के साथ देवालय ने भी अब इस विषय में सोचना बंद कर दिया और सबकुछ सामान्य रीति से चलने लगा। जलाशय में पाप होता रहा और देवालय में पुण्य।

कहो देवालय भाई ! क्या बात है ? कई महिनों से बड़े अनमने दिख रहे हो, मेरी तरफ देखते तक नहीं, नाराज हो क्या ?

आवाज सुनकर देवालय चौंका ! अरे, यह तो जलाशय की आवाज है, जलाशय की आवाज सुनते ही देवालय आग बबूला हो गया और बोला ह्न

खबरदार जो मुझे भाई कहा। तुम पाप के स्थान और मैं पुण्य का स्थान। मैं तुम्हारा भाई कैसे हो सकता हूँ ? अपनी गन्दी जुबान से फिर कभी मेरा नाम मत लेना। समझे !

शायद तुम इस बात को नहीं जानते कि पुण्य और पाप दोनों जुड़वा भाई हैं। ये दोनों ही कर्मरूपी एक ही चाण्डालिन के पुत्र हैं। दोनों में से धर्म कोई भी नहीं। तुम भ्रम से ब्राह्मणत्व (अच्छाई) के अभिमान में फूल रहे होह्न जलाशय ने कहा।

जलाशय की बात सुनकर देवालय चकराया। उसकी समझ में कुछ नहीं आया। वह बोला ह्न

तुम क्या बकवास कर रहे हो, मेरी समझ में कुछ नहीं आ रहा। साफ-साफ कहो आखिर तुम कहना क्या चाहते हो ?

मुझमें और तुममें फर्क इतना ही है कि मेरे यहाँ वर्तमान में ही पाप हो रहा है और तुम्हारे यहाँ पुण्यरूप में भावी पाप के बीज डाले जा रहे हैं अर्थात् पापानुबंधी पुण्य कमाया जा रहा है। प्रकारान्तर से कहें तो तुम भी एक तरह से पाप के ही स्थान हो ह्न जलाशय ने कहा।

पापानुबंधी पुण्य, भावी पाप के बीज, अरे ! मेरी तो समझ में कुछ नहीं आ रहा है। तुम अपनी बात को थोड़ा और स्पष्ट करो, फिर मैं तुम्हें देखता हूँ ह्न अपने क्रोध को थोड़ा काबू में करते हुये देवालय बोला ।

सुनो ! तुम्हारे यहाँ जितने भी भक्त आते हैं वे सब लौकिक सुख की प्राप्ति की वांछा को लेकर आते हैं, इन्द्रिय सुख को ही वे वास्तविक सुख समझते हैं। आत्मिक सुख के स्वरूप को न तो वे समझते ही हैं और न ही ऐसे सुख से उन्हें प्रयोजन है।

इन्द्रिय सुखों की प्राप्ति की भावना से तुम्हारे यहाँ आकर थोड़ी बहुत भक्ति-पूजा, जप-तप आदि करते हैं। इन सब क्रियाओं से उन्हें उसप्रकार का पुण्य बंध होता है, जिसके उदय में इन्द्रिय सुखों की प्राप्ति के निमित्तभूत भोग सामग्री प्राप्त हो। ऐसी सामग्री के प्राप्त होने पर नियम से वे इन्द्रिय सुखों का भोग करते हुये नवीन पाप का बंध करते हैं। उस पाप के उदय से वे जीव फिर से घोर दुःखों को प्राप्त होते हैं तथा नरकादि कुयोनियों में जाकर जन्म लेते हैं।

इन्द्रिय सुखों की वांछा तथा भोग स्वयं ही अपनेआप में पाप के परिणाम हैं तथा एक बात और तुम्हारे यहाँ पर आनेवाले कुछेक भक्त तो इतने अंधे हैं कि तुम्हारे भीतर विराजमान देव को प्रसन्न करने के नाम पर कभी पशुओं की बली तक दे ड़ालते हैं। घोर पाप और उसके बावजूद भी तुम्हें स्वयं के पुण्य का स्थान होने का भ्रम।

अत: यह बात स्वत: सिद्ध है कि तुम भी प्रकारान्तर से पाप के ही स्थान हो। फर्क इतना है कि मेरे यहाँ जो पाप होता है, वह सबको आसानी से दिखाई देता है तथा तुम्हारे यहाँ जो पाप होता है, वह किसी को दिखाई नहीं देता और न ही किसी के समझ में आता है ह्न जलाशय ने कहा।

जलाशय की सटीक टिप्पणी ने देवालय को सोचने पर मजबूर कर दिया, आखिर वह भी था तो देवालय ही। गम्भीर व्यक्तित्व का धनी देवालय कुछ देर तक सोचते रहने के बाद बोला ह्न

जलाशय ! तुम्हारी बातों में मुझे भी काफी दम नजर आता है; पर फिर भी तुम्हें मेरी एक बात तो माननी ही होगी कि वर्तमान में मेरे यहाँ आकर पुण्य कमानेवाले लोग तुम्हारे यहाँ के पापियों से काफी अच्छे हैं।

देवालय की बात सुनकर जलाशय बोला ह्न इसमें तो कोई शक नहीं कि वर्तमान के पापियों की अपेक्षा पुण्यात्मा काफी अच्छे हैं और इसलिये तुम्हारी और तुम्हारे यहाँ आनेवाले पुण्यात्माओं की जितनी भी प्रशंसा की जाये, उतनी कम ही है; किन्तु वर्तमान के साथ-साथ भविष्य का भी विचार करना चाहिये न । भविष्य भी धीरे-धीरे वर्तमान की तरफ अग्रसर हो रहा है। भविष्य को भला वर्तमान में पलटते क्या देर लगेगी।

मेरा तो यही मानना है कि वर्तमान के शुभ क्रिया-कलापों से संतुष्ट हो जाने के बजाय परमार्थ दृष्टि प्रकट कर लेने में ही ज्यादा समझदारी है। परमार्थ तो यही कहता है कि पुण्य और पाप दोनों ही संसार परिभ्रमण के कारण हैं अर्थात् दुःखरूप व दुःख के कारण हैं; क्यों कि दोनों ही कर्म हैं और कर्म से ही संसार की प्राप्ति होती है। मोक्ष की प्राप्ति कर्म से नहीं; बल्कि धर्म से होती है और धर्म वीतरागभाव अर्थात् शुद्धभावरूप है। आत्मज्ञानपूर्वक, स्वानुभवपूर्वक उस शुद्धभाव की प्राप्ति होती है।

जलाशय की बात को देवालय ने ध्यान से सुना और फिर वह बोला ह्न

तुम जो कह रहे हो ऐसी बाते तो मैंने पहले कभी सुनी ही नहीं। तुम्हारी बातों में मुझे काफी सच्चाई नजर आ रही हैं। तुमने ये सब बातें कहाँ से सुनी ? तुम इतने बड़े दार्शनिक कबसे हो गये ? मुझे तो बड़ा ताज्जुब हो रहा है। मुझे भी बताओ ना आखिर ये सब तुमने सुना कहाँ से ?

जलाशय ने उत्तर दिया ह्न जिनालय से सुना है।

जिनालय ? कौनसा जिनालय ? देवालय के आश्चर्य का ठीकाना ही नहीं रहा।

जलाशय ने देवालय से कहा ह्न मेरे बाँयी तरफ देखो। वह जो सामने की टेकडी पर जो विशाल मन्दिर बना हुआ नजर आ रहा है ह्न वही जिनालय है। उसमें जिनेन्द्र भगवान की वीतरागी भाववाही प्रतिमा विराजमान है। उसी जिनालय से अक्सर ये सब बातें मेरे कानों से आकर टकराती रहती है। जिसे सुन-सुनकर मुझमें दार्शनिकता आ गई है।

देवालय ने उधर देखा तो उसे जिनालय नजर आ गया।

ये सब बातें तुमने जिनालय से सुनी सो तो ठीक; परन्तु ये सब बातें वहाँ बताता कौन है ? क्या जिनालय स्वयं बोलता है ? अथवा उसमें विराजमान वीतरागी जिनेन्द्र भगवान ? मुझे तो कुछ भी सुनाई नहीं देता । आखिर ये आवाजें आती कब है ? देवालय ने एक साथ प्रश्नों की झड़ी लगा दी।

जलाशय ने कहा ह्न न तो जिनालय बोलता है और न ही इसमें विराजमान भगवान की प्रतिमा। भगवान की प्रतिमा तो यह मौन सन्देश अवश्य देती रहती है कि तुम मेरी तरफ क्या देख रहो हो ? मेरी तरफ देखते रहने से तुम्हें कुछ भी हाथ लगने वाला नहीं है। यदि तुम्हें सुखी होना हो तो तुम भी अपनी आत्मा की तरफ देखो। अपने अन्तरंग में झाँको, तुम स्वयं भी मेरी तरह परमात्मा हो, अनन्त शक्तियों के पुंज हो, गुणों के गोदाम हो। जैसे मैं अपने ही अन्तरंग में झाँक रहा हूँ, वैसे ही तुम भी अपने अंतरंग में झांको।

भगवान की प्रतिमा मौनरूप से यह सन्देश देती रहती है तो फिर बाकी उपदेश कौन देता है - यह बताओ न ।

मंदिर में सुबह-शाम धर्म सभाओं का आयोजन होता रहता है। समय-समय पर मुनिराज, त्यागी-व्रती, विद्वान आदि उपदेश देते रहते हैं, उन्हीं की वाणी अकसर मेरे कानों से आकर टकराती है ह्न जलाशय ने कहा।

वहाँ से आनेवाली आवाजें मुझे क्यों नहीं सुनाई देती ह्न देवालय ने पूछा।

तुमने ध्यान से सुनने का प्रयास ही नहीं किया। तुम ध्यान से सुनने का प्रयास करो। ये देखो, अभी इस समय भी वहाँ से आवाज आना शुरु हो गई है ह्न जलाशय ने कहा।

देवालय ने ध्यान से सुनने का प्रयास किया तो उसे भी सुनाई देने लगा। वहाँ से किसी महात्मा का उपदेश प्रसारित हो रहा था। वे कह रहे थे कि जीवों के परिणाम तीन प्रकार के पाये जाते हैं - शुभ, अशुभ और शुद्ध। शुभ परिणामों से पुण्य कर्म का बंध होता है, अशुभ परिणामों से पाप कर्मों का बंध होता है और शुद्ध परिणामों से किसी भी प्रकार का बंध नहीं होता; अपितु मोक्ष की प्राप्ति होती है।

संसार में परिभ्रमण करते हुये जीव ने शुभ और अशुभ परिणाम तो अनेकबार किये हैं और उसके फल में क्रमश: कई बार स्वर्ग-नरक भी गया; परन्तु शुद्ध परिणाम कभी भी प्रकट नहीं किये; इसलिये इसे मोक्ष की प्राप्ति नहीं हुई। शुभ और अशुभ परिणामों में कोई नवीनता नहीं है। नवीनता तो शुद्ध परिणामों को प्रकट करने में है।

आज का तीव्र पापी कालान्तर में उत्कृष्ट पुण्यात्मा हो जाता है और आज का उत्कृष्ट पुण्यात्मा कालान्तर में तीव्र पापी बन जाता है। इसीलिये इसमें कोई नवीनता नहीं है। नवीनता तो इस अनादिकालीन पुण्य एवं पाप की परंपरा को छेदकर शुद्धभाव अर्थात् वीतरागभाव प्रकट करने में ही है। भेद-विज्ञान पूर्वक निज शुद्धात्मतत्त्व के आश्रय से जिसने शुद्धभाव प्रकट कर लिये उसी का जीवन सार्थक है।

देवालय ने ये सब बातें बड़े ध्यान से सुनीं और न सिर्फ सुनीं बल्कि उसपर दिनभर चिंतन-मनन भी करता रहा। कई दिनों तक सुनने के बाद उसे इन बातों का अच्छी तरह से दृढ निश्चय हो गया कि जगत का परिणमन स्वतंत्र है। विश्व के सभी पदार्थ अनादिअनंत है अर्थात् स्वयं सिद्ध हैं तथा स्वयं ही परिणमनशील हैं। विश्व की व्यवस्था को सुचारुरूप से चलाने के लिये किसी तथाकथित परमेश्वर की आवश्यकता नहीं पड़ती।

परमेश्वर है तो सही पर वे जगत के कर्त्ता-धर्ता नहीं; बल्कि ज्ञाता-दृष्टा मात्र हैं और सिद्धालय में विराजमान होकर अपने ही अनंत सुख का भोग प्रतिसमय करते रहते हैं ह्न ऐसे परमात्माओं की संख्या भी अनंतानंत है। जो भी संसारी जीव चाहे, वह सम्यक् पुरुषार्थ के द्वारा स्वयं परमात्मा बन सकते हैं।

देवालय को यह बात भी अच्छी तरह से समझ में आ गई कि मेरे भीतर जो देव विराजमान हैं, वे भी शक्तिहीन हैं। प्राणियों को सुखी-दु:खी कर पाना उनके हाथ में ही नहीं। प्रथम तो जिस देव की प्रतिमा विराजमान की हुई है, उस नाम का कोई देव है भी या नहीं। यदि है तो प्रतिमा के इर्द-गिर्द उसका अस्तित्व भी है या नहीं। और यदि है तो प्राणियों के पुण्य अथवा पाप के उदय के अभाव में उनका कुछ भी भला वा बुरा करने में समर्थ नहीं है।

देवालय को दु:ख था तो सिर्फ इस बात का कि उसके यहाँ से ऐसी तात्त्विक बातों का प्रचार-प्रसार क्यों नहीं होता ? काश ! ऐसा हो पाता।

और उस दिन तो देवालय की प्रसन्नता का ठिकाना ही न रहा। जब उसके यहाँ आनेवाले भक्तों ने वहाँ से गुजरते हुये मुनिराज को रोककर उनसे धर्मोपदेश देने का आग्रह कर लिया।

देवालय के सभा मण्डप में मुनिराज को आया हुआ देखकर सैंकड़ों की संख्या में धर्म पिपासु जमा हो गये। मत्स्यपालन करने वाला ठेकेदार भी वहाँ धर्म सुनने की गरज से आ पहुँचा और धर्मोपदेश शुरु हुआ।

मुनिराज ने कर्म सिद्धान्त पर प्रकाश डाला कि किसप्रकार जीव के परिणामों का निमित्त पाकर द्रव्यकर्म बंधते हैं और कालान्तर में उदय में आकर सुख-दु:ख का अनुभव कराते हैं। इन सब बातों को मुनिराज ने अच्छीतरह से समझाते हुये अशुभकर्मों को तत्काल ही त्याग देने की प्रेरणा दी। शाकाहार और अहिंसा को कर्म सिद्धान्त के सन्दर्भ में समझाया। बलीप्रथा की निरर्थकता सिद्ध की फलस्वरूप कई लोगों की हृदय परिवर्तित हो गये। ठेकेदार ने सबके सामने खड़े होकर मांसाहार का त्याग करने की प्रतिज्ञा ली एवं मत्स्यपालन के ठेके को निरस्त करने की घोषणा की। कई लोगों ने बली न चढ़ाने की प्रतिज्ञा ली।

तालियों की गड़गड़ाहट से सभी ने ठेकेदार एवं अन्य लोगों की अच्छी भावनाओं की कद्र की और इसके साथ ही सभा विसर्जित हो गई।

जलाशय की प्रसन्नता का भी आज ठिकाना नहीं था; क्योंकि ठेकेदार की घोषणा उसने भी सुनी थी। देवालय और जलाशय सोच रहे थे कि पाप के स्थान को पुण्य के स्थान में बदलते देर नहीं लगती और पुण्य के स्थान को पाप के स्थान में बदलते भी देर नहीं लगती। पुण्य और पाप दोनों आखिर हैं तो जुड़वाँ ही। बनना ही है तो सिद्धालय की भाँति धर्म का स्थान बनो। ●

प्रवचनसार का सार

ह्न डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल

एक बूढी अंधी महिला सड़क पार कर रही थी। 'यह किसी वाहन के नीचे न आ जाय'; इस विकल्प से उसके पास जाकर एक आदमी ने उसकी लकड़ी पकड़ ली और कहा ह्न

''अम्मा! मैं तुम्हें सड़क पार करा देता हूँ।''

सड़क पार करते समय वह आदमी बोला ह्न

''अम्मा ! क्या तुम्हारा कोई बेटा नहीं है ?''

अम्मा बोली ह्न ''कौन कहता है कि मेरे बेटा नहीं है ?''

वह आदमी बोला ह्न ''जब तुम्हारा बेटा है तो फिर तुम अकेली सड़क पार क्यों करती हो ? इस भरी सड़क पर कहीं अनर्थ हो गया तो ? क्या तुम्हारा बेटा तुम्हें सड़क पार नहीं करा सकता ?''

इतना सुनकर अम्मा बोली ह्न ''करा रहा है न ! अरे, बेटा ! जो मुझे सड़क पार करा रहा है, वही मेरा बेटा है।''

जिसप्रकार उस व्यक्ति ने दया की दृष्टि से उस अम्मा को सड़क पार कराई तो उस अम्मा ने उसी को अपना बेटा बना लिया।

उसीप्रकार जो आसपास के ज्ञेय हमारे ज्ञान के ज्ञेय बने, उनको हमने अपनेपन से या प्रेम से देखा तो ये कार्माण वर्गणाएँ हमसे चिवट गईं। ध्यान रखने की बात यह है कि उनका संबंध हमसे तभी हुआ, जब हमने उन्हें अपनेपन की निगाह से देखा।

इसप्रकार जीव के भावों का निमित्त पाकर कार्माणवर्गणा कर्मरूप परिणमित होकर जीव के साथ एकक्षेत्रावगाहरूप हो जाती हैं।

१६९वीं गाथा की टीका में जो बात कही गई, उसका भाव इसप्रकार है ह्न यद्यपि जीव उनको परिणमानेवाला नहीं है; तथापि कर्मरूप परिणमित होने की शक्तिवाले पुद्गलस्कंध, एकक्षेत्रावगाह जीव के परिणाम मात्र का आश्रय पाकर स्वयमेव कर्मभाव से परिणमित होते हैं। इससे निश्चित होता है कि पुद्गल पिण्डों को कर्मरूप करनेवाला आत्मा नहीं है ।

टीका में उल्लिखित कर्मरूप परिणमित होने की शक्तिवाले पुद्गल-स्कन्ध का तात्पर्य कार्माणवर्गणायें हैं; क्योंकि २३ प्रकार के पुद्गलों में कार्माणवर्गणा नाम के जो पुद्गल होते हैं, वे ही कर्मरूप परिणमित होते हैं। शेष २२ प्रकार के पुद्गल कर्मरूप परिणमित नहीं होते।

इससे भी यह बात सिद्ध होती है कि जिन परमाणुओं में कर्मरूप परिणमित होने की योग्यता है, वे ही पुद्गल परमाणु कर्मरूप परिणमित होते हैं, अन्य नहीं।

इसप्रकार टीका में यह निश्चित किया है कि पुद्गलपिण्डों को कर्मरूप करनेवाला आत्मा नहीं है। न तो आत्मा पुद्गलपिण्डों को कर्मरूप करनेवाला है, न कारयिता है और न ही अनुमंता है। इसीप्रकार देह, मन और वाणी का भी आत्मा कर्ता नहीं है, कारयिता नहीं है और अनुमंता भी नहीं है।

तात्पर्य यह है कि जीव के विकारी परिणाम को निमित्तमात्र करके कार्माण वर्गणाएँ स्वयमेव अपनी अन्तरंग शक्ति से ज्ञानावरणादि कर्मरूप परिणमित होती हैं; जीव उन्हें कर्मरूप परिणमित नहीं करता। देह, मन और वाणी के साथ भी यही स्थिति है।

कुछ लोग कहते हैं कि आचार्यदेव कर्म की ही बात क्यों कर रहे हैं? मैं राग नहीं हूँ, मैं सम्यग्दर्शन नहीं हूँ, मैं केवलज्ञान भी नहीं हूँ ह्न ऐसा कहकर आगे क्यों नहीं बढ रहे हैं ?

अरे भाई ! आचार्य यहाँ कर्म की चर्चा करके यह बता रहे हैं कि शरीरादि के प्रति जीव को अपनापन कैसे हो गया है ?

जीवों के अन्दर यह मान्यता बैठी हुई है कि यह सब मेरे ही अपराध का फल है, मेरे ही शुभ और अशुभ भावों से इन शरीरादि का संयोग हुआ है ह्न इस मान्यता का निवारण करने के लिए आचार्यदेव कह रहे हैं कि जीवों ने कुछ नहीं किया और जीवों के करने से कुछ होता भी नहीं है। यहाँ तो आचार्यदेव यह भी कह रहे हैं कि सभी जीव यह भावना उत्पन्न करें कि मैं इन शरीर, मन, वाणी का न कर्त्ता हूँ, न कारयिता हूँ और न अनुमंता हूँ, मैं तो इन सबका मात्र ज्ञाता-दृष्टा हूँ।

राग का कर्त्ता तो जीव है न ? - यह प्रश्न उपस्थित होने पर यह स्वीकार करना कि हाँ अज्ञानदशा में राग हो गया था; लेकिन राग का कर्त्ता होना ह्न यह कोई गौरव की बात नहीं है और इससे अस्वीकृति भी नहीं है; क्योंकि राग अपने द्रव्य-गुण-पर्याय की सीमा में आता है और राग अज्ञान अवस्था में जीव से ही होता है।

अरे भाई। जब अपनी अज्ञान अवस्था थी; उस समय स्वयं आत्म-द्रव्य ही अज्ञानरूप परिणमित हुआ था। ऐसा पढकर कोई कहे कि ह्न नहीं, द्रव्य नहीं; पर्याय अज्ञानरूप परिणमित हुई थी।

अरे भाई ! पर्याय तो परिणमन का ही नाम है। परिणमित तो द्रव्य ही होता है। द्रव्य को देखने की अनेक दृष्टियाँ हैं। जब द्रव्य को प्रमाण की दृष्टि से देखेंगे तो वह गुण-पर्याय सहित दिखाई देगा, द्रव्यार्थिकनय की दृष्टि से देखेंगे तो नित्य, त्रिकाली दिखाई देगा; किन्तु पर्यायार्थिकनय की दृष्टि से देखेंगे तो वर्तमान पर्यायरूप परिणमित अनित्य दिखाई देता है।

जिनागम में जो सप्तभंगी है, वह अत्यंत विचित्र है। मैं नित्यानित्य हूँ ह्न यह प्रमाण का कथन है। मैं नित्य ही हूँ, अनित्य नहीं ह्न यह द्रव्यार्थिकनय का कथन है। मैं अनित्य हूँ, नित्य नहीं ह्न यह पर्यायार्थिकनय का कथन है।

आजकल इसके लिए लोगों ने दूसरा रास्ता निकाल लिया और वे कहते हैं कि नय लगाने से या अपेक्षा लगाने से वस्तु ढीली हो जाती है।

अरे भाई ! जिनागम में अपेक्षा के बिना तो एक वाक्य भी नहीं होता। आचार्य समन्तभद्र कहते हैं कि यदि हम अपेक्षा नहीं लगा पाएं तो भी सभी को यह समझना चाहिए कि हमारे कथन में अपेक्षा लगी हुई है; क्योंकि हम स्याद्वादी जैन हैं।

जीव शरीरादि द्रव्यों का न तो कर्त्ता है, न कारयिता है और न ही अनुमंता है। कर्मरूप परिणमित कार्माण वर्गणाओं में जीवों का परिणाम निमित्तमात्र है।

परद्रव्यों की तरफ देखना पाप नहीं है, उन्हें जानना भी पाप नहीं है; किन्तु उन्हें अपनेपन से जानना; उन्हें रागात्मक या द्वेषात्मक तरीके से जानना पाप है। ये पर में अपनेपन के भाव और रागात्मक या द्वेषात्मक भाव ही कार्माण वर्गणा को कर्मरूप परिणमित होने में निमित्त हैं। जिसप्रकार **हँसे सो फँसे** अर्थात् थोड़े से हँसने पर भी व्यक्ति परेशानी में आ जाता है; उसीप्रकार थोड़ा-सा रागात्मक या द्वेषात्मक भाव भी कार्माण वर्गणाओं का कर्मरूप परिणमित होकर जीव के साथ एक-क्षेत्रावगाह होने में कारण बन जाता है।

एक बार अर्जुन के शील की प्रशंसा इन्द्र की सभा में हो रही थी। सभी देव कह रहे थे कि आज तो अर्जुन जैसा शीलवान कोई दिखाई नहीं देता। उस समय दो देवों के मन में विचार आया कि हम उनके शील की परीक्षा क्यों न करें ? क्योंकि शीलवतियाँ तो बहुत होती हैं, शीलवानों का नाम तो हम आज सुन रहे हैं।

ऐसा सोचकर वे देव पाण्डवों की सभा में आए। उस समय सभा में नृत्य चल रहा था; वे देव भी देवांगनाओं का बहुत सुन्दर रूप बनाकर नाचने लगे।

उन देवों की निगाह तो अर्जुन पर ही थी। वे यह देख रहे थे कि अर्जुन का परिणाम नृत्य देखकर कैसा होता है ? किन्तु अर्जुन एकदम गम्भीर रहे। किन्तु जब अर्जुन थोड़ा मुस्कुराए तो उन देवों ने नाच बन्द कर दिया और चले गए।

रात के समय उन दोनों देवों में से एक देव ने देवांगना के वेश में ही अर्जुन के कक्ष में प्रवेश किया। उन्हें देखकर अर्जुन ने कहा ह्न

'तुम यहाँ पर कैसे आईं ? जाओ-जाओ, यहाँ से जाओ।'

तब देवांगना बोली ह्न 'मैं यहाँ पर ऐसे ही नहीं आई हूँ, आपका इशारा पाकर आई हूँ।'

अर्जुन ने कहा ह्न 'क्या। मैंने इशारा किया; मैंने तुम्हें बुलाया?'

देवांगना ने कहा ह्न 'हाँ, आपने मुझे इशारा किया। जब मैं सभा में नृत्य कर रही थी; तब पहले तो आप गम्भीर रहे; किन्तु बाद में मुस्कुराए तो मैंने समझा कि आप मुझे चाहते हैं, अत: मैं यहाँ आई हूँ।'

अर्जुन बोले ह्न 'नहीं, नहीं; उसका यह मतलब नहीं था।'

'फिर आप मुझे बताओ कि पहले आपके गम्भीर रहने का और बाद में मुस्कराने का क्या मतलब था ?'

उसके बाद अर्जुन ने जो जवाब दिया, वह अत्यंत ही मार्मिक है। अर्जुन ने कहा ह्न

''पूर्व भव में मेरे मन में यह इच्छा थी कि मैं दुनिया की सबसे सुंदर महिला के गर्भ से जन्म लूँ; इसलिए मैंने एक अवधिज्ञानी मुनिराज से पूछा था कि दुनिया में सबसे सुंदर महिला कौन है ?

तब मुनिराज ने मुझे बताया था कि कुंती सबसे सुंदर महिला है। उस समय मैंने यह निदान बंध किया था कि मैं कुंती के गर्भ से ही जन्म लूँ। मेरा वह निदान बंध सफल हो गया और कुन्ती के गर्भ से मेरा जन्म हुआ।

राजसभा में नृत्य के समय मैं इसलिए उदास था कि तुम्हें देखकर मुझे ऐसा लगा कि मैं धोखे में हूँ; क्योंकि तुम तो कुंती से भी ज्यादा सुन्दर हो। मेरे हँसने का कारण यह था कि उस समय मुझे विकल्प आया कि यदि मुझे एकाध भव और धारण करना पड़े तो मैं तुमको ही अपनी माँ बनाऊँगा।''

जिसप्रकार अर्जुन के जरा से हँसने से उन्हें रात्रि में देवांगना के आगमन रूप विपत्ति का सामना करना पड़ा; उसीप्रकार परपदार्थ ज्ञान में आने पर तो कोई परेशानी नहीं है; किन्तु यदि जीव ने उन परपदार्थों में अपनापन स्थापित कर लिया तो बंध होगा ही।

कर्मरूप परिणत पुद्गलद्रव्यात्मक शरीर का कर्त्ता आत्मा नहीं है का तात्पर्य यह है कि आत्मा कार्माण शरीर का कर्त्ता नहीं है। आचार्य कहते हैं कि यद्यपि जीव अज्ञान अवस्था में उन मोह-राग-द्वेष भावों का कर्त्ता है; किन्तु इन द्रव्यकर्मों और तन-मन-वचन की क्रिया का कर्त्ता नहीं है।

तदनन्तर आत्मा के शरीरपने का अभाव निश्चित करनेवाली १७१वीं गाथा इसप्रकार है ह्न

ओरालिओ य देहो देहो वेउव्विओ य तेजसिओ।
आहारय कम्मइओ पोग्गलदव्वप्पगा सव्वे ।।१७१।।

(हरिगीत)

यह देह औदारिक तथा हो वैक्रियक या कार्मण।
तेजस अहारक पाँच जो वे सभी पुद्गलद्रव्यमय।।१७१।।

औदारिक शरीर, वैक्रियिक शरीर, तैजस शरीर, आहारक शरीर और कार्माण शरीर ह्न ये सब पुद्गलद्रव्यात्मक हैं।

इसप्रकार आचार्य ज्ञेयतत्त्वप्रज्ञापन महाधिकार के ज्ञान-ज्ञेय-विभागाधिकार में यह बता रहे हैं कि मैं क्या-क्या नहीं हूँ। औदारिक शरीर नहीं हूँ ह्न यह कहकर देहादि के प्रति एकत्व छुड़ा रहे हैं। इसके बाद यह चर्चा आएगी कि ये शरीरादि पदार्थ तो स्पर्श, रस, गंध और वर्णवाले हैं; जबकि मैं अरस, अरूप, अस्पर्श, अगंध एवं चेतना गुण से संयुक्त ज्ञानानंदस्वभावी भगवान आत्मा हूँ। इसप्रकार यहाँ भेदविज्ञान की ही चर्चा है। **(क्रमश:)**

रजिस्ट्रेशन आर. एन. आई. 31109/77

'समता-सन्देश रथ' लोकार्पण समारोह

कोल्हापुर (महा.) : महाराष्ट्र प्रान्त में तत्त्वज्ञान का अधिकाधिक प्रचार-प्रसार करने के उद्देश्य से श्री शांतिसागर जिनवाणी फिरते स्वाध्याय मण्डल कोल्हापुर के लिये सर्वोदय स्वाध्याय समिति को श्रीमान् दिलीपभाई शाह परिवार मुम्बई (अहिंसा चैरिटेबिल ट्रस्ट) की ओर से एक वाहन (बजाज-क्रुझर गाडी) 'समता-सन्देश रथ' हेतु प्रदान की गई।

इसके लोकार्पण का कार्यक्रम दिनांक 5 फरवरी, 2006 को प्रात: पंचपरमेष्ठी विधान पूर्वक प्रारंभ हुआ। विधान के पश्चात् आयोजित सभा की अध्यक्षता डॉ. अजित पाटील कार्याध्यक्ष-वीर सेवा दल ने की। विशिष्ट अतिथि के रूप में श्री शरद पाटील विधायक (मिरज-पदवीधर संघ), श्री धनंजय दीगे सेक्रेटरी-जैन बोर्डिंग, श्री टी. आर. पाटील अध्यक्ष-शांतिगिरि ट्रस्ट मंचासीन थे। इस अवसर पर पूरे दिन ब्र. यशपालजी जैन जयपुर, पण्डित जिनचन्दजी आलमान, पण्डित शीतलजी शेट्टी, पण्डित शांतिनाथजी पाटील, पण्डित सुरगोंडा पाटील आदि विद्वानों के प्रवचनों का लाभ मिला।

श्री शरद पाटील व श्री दिलीपभाई शाह ने सर्वोदय स्वाध्याय समिति कोल्हापुर के पदाधिकारियों को इस रथ की चाबी समर्पित की।

वैराग्य समाचार

1. **जयपुर निवासी** श्री सुरेन्द्रकुमारजी रांवका का देहावसान हो गया है। आप अच्छे स्वाध्यायी थे, पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट से जुड़ी समस्त गतिविधियों में आपका जीवन पर्यन्त सहयोग रहा। आप वीतराग-विज्ञान (मासिक) एवं जैनपथप्रदर्शक (पाक्षिक) के परम संरक्षक थे। आपकी स्मृति में आपकी धर्मपत्नी श्रीमती कृष्णाकुमारी रांवका द्वारा श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धान्त महाविद्यालय, जयपुर को 1 छात्र हेतु पाँच वर्ष का एक लाख पाँच हजार रुपये तथा जैनपथप्रदर्शक एवं वीतराग-विज्ञान को भी 1001/- रुपये प्रदान किये गये।

2. **भोपाल निवासी** श्री सुरेशचन्दजी जैन का दिनांक 23 जनवरी, 2006 को देहावसान हो गया। आप अरेरा कॉलोनी भोपाल के मंदिर में प्रतिदिन प्रवचन करते थे तथा शिक्षण-शिविरों में निरन्तर भाग लेते थे। श्री नियमसारजी पर आपके द्वारा लिखे गये प्रश्नोत्तर 'ज्ञानधारा पत्रिका' में छपते थे। आप पण्डित राजमलजी भोपाल के अनुज थे।

3. **श्रीनगर निवासी** श्री लखमीचन्दजी की स्मृति में वीतराग-विज्ञान को 750/- रुपये प्राप्त हुये।

4. **पुणे निवासी** श्री हंसमुखलालजी शेषमलजी जैन की माताजी की स्मृति में जैनपथप्रदर्शक समिति को 500/- रुपये प्राप्त हुये।

5. **दाहोद निवासी** श्रीमती भानुमति सुरेशचन्दजी गांधी की स्मृति में जैनपथप्रदर्शक समिति को 201/- रुपये प्राप्त हुये।

6. **सांगोद-कोटा निवासी** श्री माणकचन्दजी पाटोदी की स्मृति में श्री विमलचन्दजी जैन की ओर से 150/-रुपये प्राप्त हुये।

उक्त समस्त दिवंगत आत्माओं को शीघ्र ही मुक्ति की प्राप्ति हो ह्न यही मंगल भावना है। **ह्न प्रबन्ध सम्पादक**

जैनपथप्रदर्शक के स्वामित्व का विवरण

फार्म नं. 4 नियम नं. 8

समाचार पत्र का नाम:		जैनपथप्रदर्शक (हिन्दी)
प्रकाशन स्थान	:	श्री टोडरमल स्मारक भवन, ए-4, बापूनगर, जयपुर
प्रकाशन अवधि	:	पाक्षिक
मुद्रक	:	श्री प्रमोदकुमार जैन (भारतीय) जयपुर प्रिण्टर्स प्रा.लि., एम.आई.रोड, जयपुर
प्रकाशक का नाम	:	ब्र. यशपाल जैन (भारतीय) पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, ए-4, बापूनगर, जयपुर -15 (राज.)
सम्पादक का नाम	:	श्री रतनचन्द भारिल्ल (भारतीय) श्री टोडरमल स्मारक भवन, ए-4, बापूनगर, जयपुर -15 (राज.)
स्वामित्व	:	पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, ए-4, बापूनगर, जयपुर -15 (राज.)

मैं ब्र. यशपाल जैन एतद् द्वारा घोषणा करता हूँ कि मेरी अधिकृत जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर दिये गये विवरण सत्य हैं।

दिनांक : 1-3-2006

प्रकाशक :
ब्र. यशपाल जैन
ट्रस्टी, पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर

आर्डर बुक करावें

बाल शिविरों के लिये अत्यन्त उपयोगी व जैनदर्शन की सामान्य जानकारी देनेवाली डॉ. शुद्धात्मप्रभा टडैया द्वारा लिखित **जैन जी.के. भाग-1 व 2** का शीघ्र प्रकाशन किया जा रहा है। प्राप्त करने के इच्छुक महानुभाव अपना आर्डर शीघ्र ही मो. नं. 09821923722 पर बुक करावें। **ह्न अविनाश टडैया**

जैनपथप्रदर्शक (पाक्षिक) मार्च (प्रथम) 2006
RJ / J. P. C / FN-064 / 2006-08

प्रति,

सम्पादक : **पण्डित रतनचन्द भारिल्ल** शास्त्री, न्यायतीर्थ, साहित्यरत्न, एम.ए., बी.एड.
प्रबन्ध सम्पादक : **पण्डित संजीवकुमार गोधा,** डबल एम.ए. जैनविद्या व धर्मदर्शन तथा इतिहास, नेट एवं **पण्डित जितेन्द्र वि.राठी,** साहित्याचार्य
प्रकाशक एवं मुद्रक : **ब्र. यशपाल जैन** द्वारा जैनपथप्रदर्शक समिति के लिए जयपुर प्रिण्टर्स प्रा.लि., एम. आई. रोड, जयपुर से मुद्रित तथा त्रिमूर्ति कम्प्यूटर्स, ए-4, बापूनगर, जयपुर से प्रकाशित।

यदि न पहुँचे तो कृपया निम्न पते पर भेजें -
ए- 4 बापूनगर, जयपुर - 302015 (राज.)
फोन : (0141) 2705581, 2707458
तार : त्रिमूर्ति, जयपुर **फैक्स :** 2704127